ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 150-151
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

ग्रामीण धर्म एवं कला में परिवर्तन

प्रो० (डॉ०) रामनरेश यादव समाजशास्त्र विभाग, एस०एम०एम०टी०पी० कॉलेज, बलिया (उ०प्र०), भारत

Received-29.08.2023, Revised-05.09.2023, Accepted-10.09.2023 E-mail: akbar786ali888@gmail.com

सारांश: *ग्रामीण समुदाय परम्परागत धार्मिक विश्वासों का गढ़ माना जाता है । परिवार एवं परिवारात्मकता की तरह धर्म एवं कला भी ग्रामीण समाज के जीवन को प्रभावित, परिवर्तित एवं संचालित करता रहा है। ग्रामीण समाज पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ा है, जिनमें औद्योगीकरण, नगरीकरण, पश्चिमीकरण, शिक्षा, संचार के नवीन साधन, यातायात आदि का प्रभाव उल्लेखनीय है। इन कारकों एवं प्रक्रियाओं का प्रभाव ग्रामीण धर्म एवं कला पर पड़ा है। इन दोनों क्षेत्रों में जो परिवर्तन हुए हैं उसकी चर्चा निम्नलिखित रूप से की जा सकती है :*

कुंजीभूत शब्द– ग्रामीण समुदाय, परम्परागत, परिवारात्मकता, ग्रामीण समाज, औद्योगीकरण, नगरीकरण, पश्चिमीकरण, संचार।

(1) धार्मिक दृष्टिकोण के स्थान पर सांसारिक दृष्टिकोण का विकास हो रहा है। परम्परागत ग्रामीण जीवन का प्रत्येक पक्ष धर्म–भावना से आच्छादित एवं ओत–प्रोत था। प्रत्येक क्रिया सम्पन्न करने के पहले पाप–धर्म का विचार उठा करता था। जीवन को अधिकाधिक आध्यात्मिक, सरल एवं सादा बनाये रखने में लोगों का विश्वास था। लोगों का यह अध्यात्मवादी एवं धार्मिक दृष्टिकोण आधुनिक सभ्यता, शिक्षा, सम्पर्क, भौतिकता आदि के प्रभाव से डाँवाँडोल होने लगा, जो लोग सरलता, त्याग, अध्यात्म में जीवन का सुख मान बैठे थे उनमें भौतिक दृष्टि से सम्पन्न बनने की चाह, प्रबल अधिकाधिक नगरीय भौतिक सुविधाओं के उपभोग की बढ़ती हुई कामना इसी का प्रमाण है। किसी कार्य के प्रारम्भ में अब धर्म–अधर्म का विचार नहीं किया जाता बल्कि यह देखा जाता है, कि उससे कितना आर्थिक लाभ होता है। यहाँ तक देखा गया है कि आर्थिक लाभ यदि पर्याप्त हो तो उसके करने में धार्मिक विचार को बिलकुल ही तिलांजली दे दी जाती है। पहले ब्राह्मण श्रम करना एवं अपने से निम्न जाति वर्गों के व्यवसाय अपनाना अधर्म मानता था, पर आज आर्थिक लाभ के लिये वह चमड़े की दुकान करने के लिये भी तैयार है। शर्मा पान भंडार, शर्मा बूट हाउस आदि इसी प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं।

(2) भाग्यवाद के स्थान पर कर्मवाद का उदय हो रहा है। जहाँ जीवन के प्रत्येक प्रभाव को पहले भाग्य–दोष का परिणाम मान कर सन्तोष कर लिया जाता था वहाँ अब धीरे–धीरे मानव–शक्ति में विश्वास उत्पन्न होने लगा है। इसी विश्वास के आधार पर लोग अब यह अनुभव करने लगे हैं कि परिश्रम, लगन, अवसरों का पूरा लाभ एवं वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग भी भाग्य बना सकता है, यह केवल ईश्वर का ही काम नहीं है। ईश्वर के भरोसे को तिलांजली देकर अब कर्म में विश्वास करते लगे हैं। इस अविश्वास की अभिव्यक्ति गाँवों में बढ़ती हुई शिक्षा, कृषि एवं उद्योग में बढ़ते हुये वैज्ञानिक ज्ञान के प्रयोग प्राकृतिक कोपों के वास्तविक कारणों की जानकारी आदि के रूप में देखी जा सकती है।

(3) वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार परम्परागत धार्मिक मूल्यों एवं मान्यताओं को धूल–धूसरित कर रहा है। नगरों से सम्पर्क, आधुनिक शिक्षा, यातायात एवं संचार साधन एवं वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार आदि कारकों ने ग्रामीणों को विश्वास, अन्ध विश्वास एवं धर्म के युग से निकालकर तर्कयुक्त वैज्ञानिक युग में लाकर खड़ा कर दिया है। अब ग्रामीण इस बात को जान गये हैं कि चेचक एक बीमारी है, शीतला माता का प्रकोप नहीं हैं। इसका उपचार सम्भव है, शीतला माता की पूजा पर निर्भरता बीमार के जीवन को संकट में डाल सकती है। ग्रामीण अब जानने लगे हैं, भोपा और भेरू आदि देवताओं के क्रिया–कलाप पाखण्ड हैं, जनता को धोखा है, उदर–पूर्ति का साधन मात्र है। विभिन्न कष्टों में अब इन साधनों पर विश्वास नहीं रखकर सही कारकों से उन्मूलन का प्रयत्न किया जाता है। इसके अतिरिक्त पहले जिन चीजों को ग्रामीण अधर्म समझते थे, वैज्ञानिक ज्ञान ने उनके इस विश्वास को समाप्त कर दिया या नस्ल सुधार के लिये पशुओं का कृत्रिम गर्भाधान एवं कमजोर पशुओं की समाप्ति धार्मिक आधार पर अब अधिक विरोध नहीं किया जाता। बच्चें को दस्त लगने या पेट में दर्द आदि होने पर भोपा–भेरू से झाड़–फूंक आदि न कराकर डाक्टर को दिखाने लगे हैं। धार्मिक एवं दैनिक मनौतियाँ लगभग समाप्त हो रही हैं। पितृ–भोज अथवा मृत की झात्मा को शांति प्रदान करने के लिये विशाल पैमाने पर खिलाने–पिलाने का प्रायोजन अब व्यर्थ माना जाने लगा है।

(4) धार्मिक नेताओं के नेतृत्व का एकाधिकार समाप्त हो रहा है। परम्परा के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में पुजारी, भोपा, शामन, अथवा झाड़–फूंक करने वाले वर्ग के हाथ में ग्राम का नेतृत्व था। इनका विरोध करने की लोगों में शक्ति नहीं थी। इनमें दैवी शक्ति की कल्पना की जाती थी, इस पूजनीय एवं संरक्षक माने जाते थे। अपने इस प्रभाव के कारण ये लोग वांछित दिशा में व्यवहार करने के लिये बाध्य करते थे, पर आज स्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई है। अन्धविश्वास के स्थान पर बुद्धि एवं तर्क के विकास ने इनका नेतृत्व छीन लिया। बहुमुखी विकासशील नेतृत्व उभर रहा है, जिसमें इन लोगों का कहीं स्थान नहीं है। पुजारी आदि ब्राह्मण के रूप में अपनी उच्च स्थिति बनाये रखने के लिये आज संघर्षरत हैं और नई व्यवस्था से किसी प्रकार का अनुकूलन करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जो अनुकूलन नहीं कर पा रहे हैं, उनको किसी प्रकार की मान्यता देने से ग्रामीणों ने इन्कार कर दिया है।

(5) अंग्रेजी शासन के बाद ग्रामों में धर्म–निरपेक्षता की व्यापकता बढ़ने लगी है और स्वतन्त्रता के पश्चात् तो इस ओर तेजी से प्रगति हुई है। जनतान्त्रिक मूल्यों के विकास का परिणाम प्रत्येक क्षेत्र में देखने को मिला है। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रों में धर्म–निरपेक्ष व्यवहार प्रतिमान विकसित हो रहे हैं और जनतांत्रिक मूल्यों को प्राथमिकता दी जा रही है। इसका परिणाम यह हुआ है कि धर्म पर आधारित परम्परागत समाज व्यवस्था से धर्म निरपेक्ष एव जनतांत्रिक समाज व्यवस्था का संघर्ष चल रहा है।

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

जनतांत्रिक मूल्यों को स्थापना करने के लिये धार्मिक रूढ़िवादियों एवं कट्टरपंथियों की समाप्ति का आज गाँवों में प्रयत्न चला रहा है। धार्मिक कर्म–काण्डों के प्रति भी ग्रामीणों की श्रद्धा कम होती जा रही है। सभ्य समाज देवी–देवताओं और दैवी शक्तियों की पूजा में भैंसों, बकरों आदि के बलिदान को घृणा की दृष्टि से देखता है। ग्रामीण लोग भी अपनी स्थिति उच्च बनाने के लिये इस प्रकार के हीन समझे जाने वाले मूल्यों को तिलांजलि दे रहे हैं। भैसों एवं बकरों का बलिदान कम हो रहा है। लोग पूजा–पाठ में भी कम रुचि दिखाने लगे हैं। साधु सन्तों की उपासना एवं भक्ति में भी कमी आई है। अन्ध–श्रद्धालु अनुयायी वर्ग कम होता जा रहा है। वह प्रत्येक तथ्य को तर्क की कसौटी पर कसना चाहता है।

(7) धार्मिक संगठन भी शिथिल पड़ रहे हैं। उनकी कट्टरता कम हो रही है। अनेक धार्मिक संगठन आधुनिक परिवर्तनों के साथ अपने रूप में परिवर्तन ला रहे हैं, जिसके बिना उनका अस्तित्व बिल्कुल ही समाप्त हो सकता है। दान आदि की प्रथा भी कम हो रही है।

(8) धार्मिक क्रिया–कलापों का पाश्चात्यकरण एवं आधुनिकरण हो रहा है। आज अनेक धार्मिक उत्सव, भजन, कीर्तन, पूजा–पाठ आदि लाउडस्पीकर, बिजली, एवं पंखें के बिना अधूरे माने जाने लगे हैं। गाँवों यद्यपि इनका अभाव है, फिर भी वहाँ धार्मिक अनुष्ठानों में ऐसी चीजों का प्रयोग किया जाता है जो आधुनिक सभ्यता की देन हैं ।

(9) ग्रामीण कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इस सम्बन्ध में आये परिवर्तनों की व्याख्या संक्षेप में इस प्रकार की जा सकती है–

(i) कला का जीवन से सम्बन्ध विच्छिन्न हो रहा है। तीव्र परिवर्तनों की प्रक्रिया में परम्परागत कला एवं संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण में प्रतिकूल परिवर्तन आ रहा है। अतः जीवन तो अपना रह गया है पर कला एवं संस्कृति अपनी नहीं रही। कला का आयात हो रहा है। नगरों में प्रचलित सिनेमा के गाने, नाच आदि पसंद किये जाने लगे हैं।

(ii) इसके परिणामस्वरूप परम्परागत कला में स्थानीय कृषि, उद्योग सम्बन्धी प्रक्रियाओं को जो अभिव्यक्ति होती थी, उसके स्थान पर अब नगरीय प्रक्रियायें अभिव्यक्त होने लगी हैं। अभी तक लोकगीतों, लोकनृत्यों आदि में स्थानीय जीवन अभिव्यक्त होता था, अब इसमें परिवर्तन आ रहा है। आधुनिक सभ्यता में रंगे ग्रामीण स्थानीय विशेषताओं से ओत–प्रोत कलात्मक अभिव्यक्ति से घबराने लगे हैं।

(iii) अभी तक कला का रूप अव्यावसायिक था, जीवन की आवश्यकता थी पर अब इस व्यावसायिक रूप लेना भी प्रारम्भ कर दिया है। इतना ही नहीं लोक–नृत्य एवं लोकगीत आदि एक विशिष्ट वर्ग की वस्तु बन गये हैं और वह वर्ग इसे अधिकाधिक व्यावसायिक रूप दे रहा है।

(iv) परम्परागत कला पारिवारिक थी, सामूहिक थी, पैतृक धरोहर थी पर धीरे–धीरे अब यह वैयक्तिक एवं स्वेच्छा का विषय बन रही है। कला–कौशल के क्षेत्र में पिता–पुत्र का अनुसरण अब आवश्यक नहीं समझता। उसके समक्ष चुनाव के अवसर खुले हैं। परिणामतः परम्परागत हस्त–कौशल के साथ कला का जो समन्वय था, उसकी रक्षा कठिन हो गई है और लोग नये–नये व्यवसाय अपना रहे हैं। आर्थिक, सामाजिक, प्रौद्योगिक, राजनैतिक एवं दार्शनिक परिवर्तनों के कारण कला का परम्परागत रूप महत्वपूर्ण परिवर्तनों से होकर गुजर रहा है।

लोक कलाओं, लोकनृत्यों, लोकगीतों, लोक नाटकों आदि के स्थान पर सिने–गीतों, नृत्यों, नाट्यों आदि का प्रचलन बढ़ रहा है, गीतों और नृत्यों में ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति के स्थान पर विलास एवं अश्लीलता का भरपूर समावेश हो रहा हैं, ग्रामीण समाज में नया नेतृत्व जो उभर रहा है, वह कला को हीन दृष्टि से देखने लगा है एवं इसे विशिष्ट वर्ग का कार्य मानने लगा है, इसके परिणामस्वरूप कला की अभिव्यक्ति एक विशिष्ट वर्ग का व्यवसाय बन रही है, जीवन का अभिन्न अंग नहीं। स्थिति अभी अधिक विकट नहीं बनी है, इसलिये इस ओर ग्रामीण समाजशास्त्रियों का भ्रूक्षेप आवश्यक है और अध्ययन– समाधान के प्रयत्न की इस ओर अपेक्षा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Ishwaran, K (1970) : Change and community in India's villages, Columbia university press, New York.
2. Srinivas, M.N. (1966) : Social change in modern India, Califorria press, Loss Angles.
3. Gupta, M.L. & Sharma, D.D. (1998) : Indian rural sociology, Sahitya Bhawan Publication, Agra.
4. Dubey, S.C. (1991) : Indian village sage publication, New Delhi.
5. Srinivas, M.N. (1952) : Religion and Society among coorgs of South Africa, California press, Loos Angles.

*****